अनोखा टापू
नागार्जुन

अनोखा टापू

नागार्जुन

माहेश्वरी वाणी प्रकाशन प्रा.लि.
4695/21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

माहेश्वरी वाणी प्रकाशन प्रा.लि.
4695/21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
द्वारा प्रकाशित
ANOKHA TAPU
by Nagarjun
संस्करण : 2011

ISBN:81-89795-13-9
मूल्य : 30.00
शुभम् ऑफसेट शाहदरा, दिल्ली-110032
द्वारा मुद्रित

अनोखा टापू
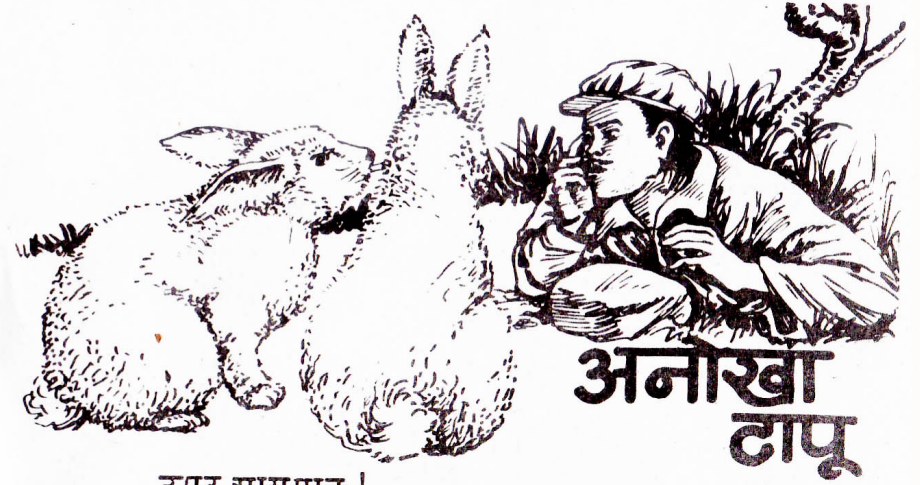
ऊपर आसमान !

नीचे पानी, और पानी की सतहों पर तैरते हुए बर्फानी चट्टानों के छोटे-बड़े ढोके ।

दर असल, हमारा वह जहाज था ही ऐसा कि सिर्फ ठंडे जल-वायु वाली दुनिया में चल सकता था ।

एक बार तूफान के चक्कर में पड़कर हम लोग अपनी दिशा से बहुत दूर भटक गए ।

मैं नीचे, मशीनों के पास, इंजिन के इर्द-गिर्द काम करता रहा । मुझे इस बात में रत्ती-भर भी दिलचस्पी नहीं थी कि हमारा जहाज किस अक्षांश से गुजर रहा था मैं यंत्र-जगत में मशगूल था !

"जमीन, जमीन" अचानक मैंने चिल्लाने की आवाज सुनी, "जमीन, जमीन !"

"घास, घास, घास !"

"हरियाली, हरियाली !"

उल्लास-भरी चीख-पुकार बार-बार सुनाई दे रही थी।

विश्वास करना यों तो असंभव ही था। आखिर मैं भी दौड़कर डेकपर चला आया।

बात बिल्कुल सच थी।

हरी-हरी घास सामने लहरा थी। धरती का मट-मैला वक्ष दिखलाई दे रहा था। आसमान में सूरज की किरणें खुलकर चमक रही थीं।

सभीके चेहरे खुशी से दमक रहे थे। उन्होंने गाना शुरू कर दिया था। कइयों के कूल्हे मटक रहे थे, ठेहुने मचल रहे थे, कमर लचक रही थी।

कप्तान ने जहाज रोक दिया।

हमने उससे अनुरोध किया, "हमें थोड़ी देर के लिए किनारे पर उतार दो! हरी घास वाले इस टापू में हम थोड़ा घूम-फिर लेंगे!

कप्तान ने हमारी बात मान ली।

लंगर डाल दिए गए।

जहाज किनारे से जरा इधर ही खड़ा हुआ।

साथ वाली छोटी नावों में बैठकर हम टापू पर आ गए।

हम अलग-अलग हिस्सों में बंट गए।

मैं पहाड़ी के पार घूमता-घामता बहुत दूर निकल गया। भटकते-भटकते थक गया तो एक चरागाह के बीच घासों में निढाल होकर पड़ रहा।

कि सामने कुछ उजला-उजला-सा चमक उठा!

"क्या होगा भला?" उत्सुकता के मारे मैं अब लेटा नहीं रहा पाया, बैठ गया उठकर।

"खरगोश! हां, सचमुच खरगोश ही तो है।"

"वाह, हरी-हरी घास पर उजला-उजला खरगोश कितना अच्छा लग रहा है! नहीं, मैं हिलूंगा नहीं, खर-गोश भाग जाएगा।"

"मगर, एक नहीं, कई हैं खरगोश!"

"हे भगवान्! दसियों हैं।"

मैं ऊब गया, चुपचाप बैठना मुश्किल था।

थोड़ा-सा आगे खिसका।

खरगोश मेरी तरफ घूमे और उछले।

मुझसे दूर? नहीं, मेरी दिशा में!

मैंने अपने को खरगोशों की विशाल बिरादरी से घिरा हुआ पाया।

वे मेरी ओर देख रहे थे। हवा में मनुष्य के शरीर की गन्ध भांप रहे थे। वे जानने की कोशिश कर रहे थे कि मैं आखिर किस तरह का जन्तु हूं।

मैं उठकर आहिस्ता-आहिस्ता चहलकदमी करने लगा। खरगोशों की ढिठाई पर मैं दंग था। मुझे पता नहीं था कि वे इतने निडर होते हैं···

मैंने मनमाने ढंग से घूमना शुरू कर दिया। मैंने सिगरेट तक जलाई। फिर भी वे परेशान नहीं हुए। वे अपनी पिछली टांगों के बल बैठ गए थे और मुझको अच्छी तरह देख रहे थे।

अब मैं उनसे बातें करने लगा—"तुम्हें डर नहीं लग रहा है मुझसे ? तुम इस कदर बेखबर होकर मनुष्य के सामने बैठे हो ? मैं तुम्हें डराता हूं।"

खरगोशों पर मेरी बात का जरा भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे इतमीनान से कान हिलाते रहे।

"मैं तुम्हें गोली मार दूंगा।" उंगलियों से निशाना साधने की मुद्रा बनाकर मैंने फायरिंग की आवाज की। "धांय धांय !!"

खरगोश उछले, लेकिन आगे नहीं।

मेरे पास बंदूक नहीं थी। उन्हें शायद मालूम हो गया था।

अब पांच-सात खरगोश करीब आ गए।

बिलकुल करीब ! वे मुझे दिखला-दिखलाकर घास कुतरने लगे—मैं हंस रहा था।

लगा कि जहाज पर लौटने का समय हो गया है।

"अच्छा, विदा प्यारे दोस्तो !" मैंने हाथ हिलाकर कहा और मैं वहां से चल पड़ा।

सामने पहाड़ियां थीं।

सोचा, किसी एक पहाड़ी पर चढ़कर देख लूं कि हमारा जहाज किस तरफ है। ऊपर से समूचा टापू दिखाई पड़ेगा, समुद्र के किनारे दिखाई पड़ेंगे।

पहाड़ी पर चढ़ने लगा तो खुरों के निशान दिखाई पड़े। गाय के खुर थे—पूरा का पूरा झुंड ही गुजरा होगा।

तो फिर चरवाहे भी आसपास कहीं जरूर होंगे। मैं उनसे पूछूंगा, इधर के खरगोश इतने निडर क्यों होतेहैं।

खुरों के निशान तंग होते गए। आखिर में वे निशान आपस में कट-पिटकर गड्ड-मड्ड होने लगे थे। साफ था कि मवेशी लाइन बनाकर आगे बढ़े होंगे। यह रास्ता आगे चढ़ाई का था। मुझे पैरों के साथ हाथों का भी सहारा लेना पड़ा। फिर अचम्भा हुआ कि गाएं किस तरह ऊपर चढ़ाई पर गई होंगी ! हां, बकरियां होतीं तो जा सकती थीं।

ऊपर, सामने भारी चट्टान थी। खुरदरी नहीं, चिकनी ! पेट के बल रेंगते हुए किसी तरह ऊपर पहुंचा।

थोड़ी देर के लिए चट्टान पर सुस्ताने लगा।

फिर देखता क्या हूं कि मोटे बालों और बड़े सींगों

वाला एक अजीब जानवर सामने खड़ा है। बैल और बकरे की मिली-जुली शकल थी। रोएं जमीन को छू रहे थे, खुर काफी तेज थे। उसने मुझे देखा, फिर मेरी तरफ बढ़ने लगा।

मेरी तो सांस ही टंग गई।

पीछे लुढ़कने या कूदने की गुंजायश नहीं थी। तीन तरफ गड्ढा ही गड्ढा था—गेंद की तरह नीचे जाऊंगा, कचूमर ही निकल जाएगी। उधर देखा तक नहीं जा रहा था।

और सामने था बड़े-बड़े सींगों वाला वह अद्भुत जंतु—सीधे यमराज के दरबार में पहुंचा देने को तैयार!

कलेजा मुंह को आ गया। मैंने आंखें मूंद लीं, अपने को किस्मत के हवाले कर दिया।

वह जानवर बिलकुल करीब आ गया। उसकी गर्म सांस मेरे बदन से टकराने लगी।

इससे अधिक तो मैं बर्दाश्त भी नहीं कर सकता था। लगता था, आतंक के मारे प्राण पखेरू अब उड़े, तब उड़े!

एक आंख नहीं, आधी आंख खोलकर मैंने देखा। उसकी नाक मेरी नाक से सट रही थी। नथुने फुलाकर उसने हवा खींची, फिर एक ओर होकर थूथन को फैला

दिया। फिर पीछे मुड़ गया। फिर धीरे-धीरे लौट गया।

मैंने चैन की सांस ली—वह मुझे मारना नहीं चाहता था। नाहक मै आतंकित हो गया था।

अब मैं अपने पैरों के बल पर खड़ा हो गया।

तो, देखता क्या हूं कि दूर सामने उनका झुंड का झुंड खड़ा है। बीस से कम तो क्या होंगे! पहाड़ी पर चर रहे थे।

उनमें से एक भी मेरी कचूमर निकालने के लिए काफी था। लेकिन नहीं, उनकी नीयत बुरी नहीं थी।

अब मुझे उनका नाम याद आ गया। मैंने कहीं, किसी किताब में पढ़ा था—वे 'याक' थे।

उनके बीच से होकर ही समुद्र-किनारे की पगडंडी गई थी। मुझे अपना जहाज नजर आने लगा।

मगर मैं उनके बीच से होकर निकलूंगा कैसे?

सारा साहस बटोरकर मैं जोर से चिल्लाने लगा, हाथों को पनचक्की के पंखों की तरह हिलाने लगा, पैरों को पटकने लगा।

सभी याकों ने कान खड़े कर लिए।

डर के मारे मैं फिर लेट गया।

वे फिर घास चरने लगे।

उधर जहाज भोंपू पर भोंपू बजा रहा था। मैं ही बच रहा था। बाकी सभी मुसाफिर जहाज पर सवार हो चुके थे।

मेरे अंदर साहस वापस आया और मैं आगे बढ़ा।

वे घास चर रहे थे और सींग उठा-उठाकर मेरी तरफ देख भी लेते थे।

मैं उनके बीच से होकर चलने लगा। मन ही मन मैं उनसे प्रार्थना कर रहा था—मुझे चोट मत पहुंचाओ, मैं तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ूंगा। चुपचाप मुझे निकल भर जाने दो। याक तो बड़े ही भले जानवर होते हैं, हमने बचपन से तुम्हारी तारीफ सुन रखी है!

वे पागुर करते रहे।

वे मुझे देखते रहे।

अपने हिलते कानों से वे मुझे आगे बढ़ने को उत्साहित कर रहे थे। उनकी प्रशान्त दृष्टि मुझे अभय प्रदान कर रही थी।

मेरा आतंक धुल गया। मैं उनके बीच से गुजरने लगा तो सहज ही इच्छा हुई कि उनकी पीठ थपथपाता चलूं। मैंने वैसा किया भी और उन्होंने पूंछ-कान हिला-कर मेरा यह स्नेह-भाव स्वीकार कर लिया।

आगे बढ़ने पर एक याक मिला जो बीच पगडण्डी पर इत्मीनान से लेटा जुगाली कर रहा था।

मैंने हाथ जोड़ लिए—"दादा, रास्ता छोड़ दो!"

वह नहीं हटा तो झुककर मैंने उसके कान में कहा—"आप चाहते क्या हैं? हुजूर, देखिए न, वह मेरा जहाज

छूटा जा रहा है !"

मगर उस भले जीव ने बुरा नहीं माना। पूंछ हिलाई और उठ खड़ा हुआ ! पालतू बैल की तरह एक तरफ हट गया। मैंने उसे बल्कि प्यार का हल्का-सा एक धक्का भी दिया।

पहाड़ी से उतरते ही मैं जहाज की तरफ लपका।

फिर भेड़ियों का एक जोड़ा सामने आया।

हे भगवान ! अब क्या होगा ? ये तो मुझे नहीं छोड़ेंगे।

संयोग से एक मक्खी उड़ती आई और नाक के अन्दर घुस ही गई मानो ! मुझे जोरों की छींक आई और वह बाहर निकल आई।

छींक सुनते ही भेड़िए ठमक गए।

और मैं भागता-भागता किनारे तक पहुंच गया।

नाव मेरा इन्तजार कर रही थी।

जहाज ने भोंपा बजाकर मानो मुझे फटकारा ! सचमुच, बड़ी देर कर दी थी मैंने।

जैसे-तैसे नाव मुझे लेकर जहाज से जा लगी।

कप्तान ने उलाहना-भरे स्वर में कहा, "अजीब लड़के हो तुम भी ! तुम्हारे लिए हम कितने परेशान थे, क्या बतलाऊं !"

लंगर उठ गए तो जहाज चल पड़ा।

"बड़ा ही अद्भुत टापू था दादू !" मैंने कप्तान से कहा, "खरगोश, याक और भेड़िये--सभी निहायत शरीफ थे ! ऐसा तो कहीं नहीं देखा आज तक---क्या बात है ?"

कप्तान मुस्कराकर बोला, "यहां आदमियों का आवागमन नहीं है। इसीसे इस टापू के प्राणी आदमियों से नहीं भड़कते।"

"तभी तो !" मेरे मुंह से निकला।

कप्तान अनुभवी था। उसे इस टापू के जानवरों की आदतों का शायद पता था।

जहाज की रफ्तार तेज हुई।

मैं अन्दर उतर आया, इंजन की मशीनों का संगीत फिर मुझपर जादू डालने लगा।

दो भाई थे। दोनों किसान खानदान के थे। उनमें से बड़ा अलग हो गया। धीरे-धीरे उसके पास काफी संपदा इकट्ठी हो गई। छोटा भाई और गरीब होता चला गया। बड़े भाई ने नजदीक वाले शहर में कोठी बनवा ली। कई तरह के कारोबार करने लगा। उसकी आमदनी दिन दुगनी, रात चौगुनी बढ़ती चली गई। उसके लिए जीवन में सुख ही सुख था। वह दुख का नाम भी भूल गया।

छोटा भाई लगातार मुसीबत में फंसता चला गया। खेती-बारी चौपट, घर-गिरस्ती चौपट। थोड़ी-बहुत जो भी जमीन थी, वह भी निकलती चली गई। पीछे कर्ज मिलना भी मुश्किल हो गया। बाल-बच्चे दाने-दाने को तरसने लगे। कपड़े-लत्ते पुराने पड़े तो मैले ही होते चले गए, चीथड़े-चीथड़े दिखाई देने लगे। परिवार से हंसी-

मुस्कान गायब हो गई। खीझ और घुटन और चिड़-चिड़ापन...बच्चों पर जब-तब पिटाई पड़ने लगी। बीवी की आंखों के आंसू सदाबहार हो चले...छोटा भाई बेहद परेशान था। उसके जीवन में दुख ही दुख था। वह सुख का नाम भी भूल गया।

एक दिन छोटे भाई ने अपनी बीवी से कहा, "शहर जाकर दादा से मिल आता हूं। वह जरूर हमारी मदद, करेंगे। क्यों ? नहीं करेंगे मदद ?"

"मैं क्या जानूं !" औरत बोली, "जाओ, देखो, पहचानते भी हैं कि नहीं !"

अगले दिन, सुबह, छोटा भाई शहर की तरफ चल पड़ा।

शहर आकर उसने भाई का मकान ढूंढ़ निकाला। मुलाकात हुई। इधर-उधर की बातें कर चुकने के बाद छोटे ने गिड़गिड़ाकर कहा—"दादा, मेरा तो बड़ा ही बुरा हाल है। बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं। अब तुम्हारा ही आसरा है"

"अच्छा तो यहां कुछ काम करो !" बड़े ने जवाब दिया।

छोटा भाई काम में लग गया।

वह कुएं से पानी निकालता, कुल्हाड़ी से लकड़ी फाड़ता, बैलों-घोड़ों की सेवा करता, बाहर-भीतर झाड़ू-

बुहारी देता।

सात रोज बाद बड़े भाई ने उसे थोड़ा-सा अनाज दिया––"जाओ, यह रही तुम्हारी मजदूरी !"

छोटे भाई ने कृतज्ञता प्रकट की और माथा झुका लिया।

वह गांव के लिए प्रस्थान करने ही वाला था कि बड़े भाई को जाने क्या याद आ गया, रुकने का इशारा किया।

"देखो, कल अपने यहां दोस्तों की दावत है। तुम भी उसमें सपरिवार शामिल होना। तुम्हें भी निमंत्रण देता हूं···" बड़े ने कहा।

छोटा बोला––"नहीं, मैं नहीं आ सकूंगा कलवाली दावत में। शहर के नामी-नामी लोग आएंगे दावत में। सूती-रेशमी-ऊनी लिबास के एक से एक नमूने चमकेंगे। मेरे पास न तो जूते हैं, न कपड़े। मामूली पहनावा भी नहीं है। मैं कैसे शरीक होऊंगा भला उस दावत में ?"

बड़े ने आग्रह का रंग जमाते हुए कहा––"नहीं, यह कैसे होगा ! सारी दुनिया आएगी, अपना ही आदमी नहीं आएगा ! देखो, तुम्हें अवश्य आना है ! और देखो, बहू को भी लेते आइयो··· हम एक तरफ बैठा देंगे तुम दोनों को !"

छोटा भाई घर लौटा।

अगले दिन उसने बीवी से दावत की बात बतलाई। उसे भी साथ चलने को राजी किया।

वक्त से कुछ पहले ही दोनों पहुंच गए। खाली बेंच पर एक ओर बैठ गए, सिकुड़े-सिमटे···

शुरू हुई दावत···

पहले पूड़ियों-कचौड़ियों, साग-सब्जियों और चटनियों-अचारों का दौर चला। फिर मिठाइयों का–– बर्फी, बालूशाही, गुलाबजामुन, इमर्ती, मोतीचूर, घेवर, रसगुल्ला, मलाई चाप का। फिर खीर और रबड़ी का। फिर दही का दसियों नौकर-चाकर थे जो पूछ-पूछ कर लोगों को जिमा रहे थे। ना-ना करने पर भी पत्तलों में डाले ही जा रहे थे।

हाय, इन दोनों अभागों की तरफ किसी ने ध्यान नहीं दिया ! एक-एक करके सभी लोग चले गए मगर इनकी ही सुध किसीने नहीं ली। जब तक भोज-भंडारा जोरों पर था, ये बेचारे महज निगाहों से स्वाद लेते रहे।

अंत में नौकर-चाकर भी अन्दर चले गए।

छोटा भाई और उसकी बीवी, दोनों ही अपना-अपना कलेजा थामकर कोठी के होते से बाहर निकल आए, देहात का रास्ता पकड़ा।

राह चलते-चलते किसान का जी हुआ कि गीत की

एक-आध कड़ी गुनगुनाता चले।

उसने बीवी से करा—"तुम भी साथ दो!"

वह बोली—"खाली पेट अब यही करना है? ना बाबा, मुझसे न कहो गाने-वाने को?"

"राह आखिर कैसे कटेगी?"

"भूख की आंच काफी है!"

फिर भी छोटे भाई ने गाने की अपनी जिद नहीं छोड़ी। वह गुनगुनाता चला।

आगे बढ़ने पर उसे लगा कि कोई दूसरा स्वर भी गीत की कड़ियों को दुहराता चल रहा है। उसने औरत से पूछा—"तू भी साथ-साथ गा रही है न?"

"कहां? नहीं तो!"

"जरूर गा रही है!"

"अच्छा तमाशा खड़ा कर रहे हो जी। भंग-वंग तो नहीं छानी है। क्या बक रहे हो तुम?"

"तो, यह मेरे साथ-साथ कौन गा रहा है? तू जरा कान लगा के सुन तो?"

"हां, गा तो रहा है कोई।" अब किसान का माथा ठनका। वह बीच राह में ठमक कर खड़ा हो गया और गाने लगा। दुहरी आवाज सुनकर वह पैर पटकने लगा—"कौन है तू? यह किसकी आवाज मैं तब से सुन रहा हूं?"

"मालिक, मैं हूं दुख !"

"कौन दुख ? सुख का भाई ?"

"जी हजूर ! गरीबी भी मेरा एक नाम है ।"

"दरिद्रता भी ?"

"जी सरकार !"

"मेरे साथ कहां तक चलेगा तू ?"

"हमेशा साथ दूंगा मालिक !"

"अच्छा ? "

"जी हजूर, कभी नहीं साथ छोड़ूंगा ।"

छोटा किसान घर लौटा । दुख उसे कुरेदने लगा ।

"क्या चाहता है ?" किसान ने पूछा ।

दुख ने कहा, "चलो भट्ठीखाना ।"

"भट्ठीखाना ?"

"हां भट्ठीखाना ! कलाली ।"

"मेरी टेंट में पैसा नहीं है !"

"ओढ़ने का कंबल ले चलो, जाड़े तो बीत ही चले ।"

किसान ने कंबल ले लिया । कलाली जाकर कंबल भट्ठीवाले के हवाले किया, बदले में दारू पी आए दोनों ।

अगले दिन दुख फिर चीखता रहा, "बाप रे ! बचाओ रे ! जान गई रे !"

उससे अगले दिन भी वह चीखता रहा । तीसरे दिन किसान ने पूछा, "क्या हुआ है ?"

"चलो भट्ठीखाना, नहीं तो मेरे प्राण निकल जाएंगे ।"

"धत् पैसा न दमड़ी ! चाटेगा चमड़ी ?"

"इसमें पैसे की क्या दरकार ! चलो, बैल ही खोल ले चलो ! खेती का मौसम आएगा तो देख लेंगे ।"

दुख भला पिंड छोड़ेगा किसान का ! उसे बैल ले जाकर भट्ठीवाले को सौंपना पड़ा । दोनों उस रात भी काफी चढ़ा आए । फिर किसान को उसके लिए हल भी बेचना पड़ा । फिर किसान को मकान गिरवी रखना पड़ा ।

आखिर तंग आकर उसने दुख से कहा, "अब तो भूंजी भांग भी नहीं बची, अब क्या लेकर हम भट्ठीखाना जाएंगे ?"

"क्यों ! मालकिन के बक्से में साड़ी नहीं है ?"

किसान चीख पड़ा, "तू बड़ा दुष्ट है !"

दो रोज बाद दुख बेचारा बीमार पड़ गया । वह जोरों से कराह रहा था । किसान को दया आ गई उस पर । बीवी की नजर बचाकर उसने बक्से से साड़ी निकाल ली थी । दोनों साड़ी के बदले दारू चढ़ा आए !

अब दुख को अच्छी तरह पता चल गया कि सचमुच ही कुछ नहीं रह गया है । अगले दिन सवेरे उसने किसान से कहा, "मालिक, पड़ौसी से बैलगाड़ी ले लो । हम जंगल की तरफ चलेंगे ।"

पड़ौसी ने किसान से कहा, "गाड़ी,-बैल लेकर तू क्या करेगा ?"

"जंगल से लकड़ी लाऊंगा। तुम्हारा भी मजदूरी में साझा रहा।"

"अच्छा तो ले जा। देखना, ज्यादा बोझा नहीं लादना। हमारे बैलों को तकलीफ होगी।"

किसान और दुख चले जंगल की ओर। काफी दूर जाने पर जंगल मिला। दुख ने पूछा, "सबसे बड़ी चट्टान किधर है ? है तुम्हें मालूम ?"

किसान बोला, "वाह, मालूम क्यों न रहेगा ! चलो बतलाता हूं।"

बैलों को हांकता हुआ किसान उस चट्टान के पास पहुंचा। गाड़ी खड़ी कर दी गई।

दुख ने कहा, "आओ जोर लगाएं, इस चट्टान को जरा खिसका दें।"

किसान ने कंधा भिड़ाकर जोर लगाया। दुखन राम ने भी कंधा लगाया।

दोनों हांफने लगे।

बार-बार जोर लगाने पर चट्टान खिसकी।

अन्दर गुफा झांक रही थी।

दुख बोला, "आओ, अंदर झांककर देखो क्या है।"

किसान ने गुफा के अन्दर झांका तो आंखें चौंधिया

गईं जगमगाहट के मारे, "बाप रे, क्या है जो इतना चमक रहा है भाई ?"

"सोना है सोना !" दुखन चीखा, "बुड़बक कहीं के ! अशर्फियों का अंबार लगा है, देखते नहीं हो ? निकालो, लाद लो गाड़ी पर, जितना लाद सको ! देरी मत करो।"

किसान ने अशर्फियों की थैलियां लादनी शुरू कीं। खुशी के मारे वह बदहवास हो गया था।

काफी लाद चुका तो बोला, "अब तो मुझसे नहीं होगा। अब तुम लादो।"

दुख गुफा के अन्दर गया। किसान ने चट से चट्टान इधर खिसका दी। गुफा का दरवाजा बन्द हो गया। अंदर दुख चीख रहा था। किसान ने उसकी चीख-पुकार पर ध्यान नहीं दिया। उसने बैलों को गाड़ी में जोता और जंगल से बाहर निकल आया। सारा सोना निकाल-कर घर के अन्दर ले आया। गाड़ी और बैल पड़ोसी के हवाले कर दिए। धीरे-धीरे किसान ने जमीन खरीदी, मकान बनवाए। अब वह अपने बड़े भाई से भी अच्छी तरह रहने लगा। एक दिन वह शहर जाकर बड़े भाई को निमन्त्रण दे आया। बड़ा भाई आया तो छोटे का ठाट देखकर वह दंग रह गया।

अमीरी ढंग का खाना खाकर बड़ा भाई ऊपर-ऊपर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। बोला, "वाह-वाह, तुमने

तो कमाल ही कर दिया छोटन ! जरा हमें भी तो तरक्की का रास्ता धरा दो।"

छोटे भाई ने सारी बात खुलासा करके बतला दी। अब बड़े भाई के मन में जलन पैदा हुई। वह जंगल पहुंचकर गुफा के दरवाजे तक आया। सोचने लगा, "खोल दूं इस खोह का मुंह, दुख बाहर निकलकर फिर से छोटन की गर्दन पर जाके बैठेगा,दरिद्रता देवी फिर से छोटन का सुख चाट जाएगी।"

चट्टान को उसने जैसे-तैसे खिसका दिया। अंदर से निकला दुख।

"क्या हुआ है सरकार ?

"जाओ, छोटे भाई का साथ दो। तुम्हारे बिना वह घबराता है। अकेले आखिर कैसे रहेगा ?"

"उहुं" दुख बोला, "मालिक, मैं अब आपकी ही खिदमत करूंगा। आपका दिल बड़ा ही मुलायम है।"

बड़े भाई ने लाख समझाया, मगर वह टस से मस नहीं हुआ। साथ लग ही गया। उसने बड़े भाई को भिखमंगा बना दिया।